International Journal of Applied Research 2017; 3(7): 703-705

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(7): 703-705
www.allresearchjournal.com
Received: 11-05-2017
Accepted: 12-06-2017

डॉ. राजेन्द्र सिंह
सहायक प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, जनता कॉलेज,
चरखी दादरी, हरियाणा, भारत

Correspondence
डॉ. राजेन्द्र सिंह
सहायक प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, जनता कॉलेज,
चरखी दादरी, हरियाणा, भारत

नरेश मेहता के काव्य में सामाजिक बोध

डॉ. राजेन्द्र सिंह

प्रस्तवना

''हाय
आज तक मैं निमित्त ही रहा
कुल के विनाश का
लेकिन अब नहीं बनूँगा कारण
जन के विनाश का।''[1]

वास्तव में, नरेश मेहता का काव्य सामाजिक बोध और मानवीय संवेदनाओं का काव्य है, जो अपने कलेवर में सामाजिक चेतना एवं जीवन–मूल्यों के यथार्थ रूप को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। इनका काव्य जीवन से सीधा साक्षात्कार करता है जिसमें युग–परिवेशगत जीवन्तता एवं आवश्यकता तथा चुनौतियों से संघर्ष करने का अदम्य साहस है। इस प्रकार इनका काव्य जीवन–संघर्षों एवं वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का सजीव चित्रण करता है।

निस्सन्देह नरेश मेहता की कविताएँ सामाजिक बोध की कविताएँ हैं जिनमें उपेक्षित, तिरस्कृत और बहिष्कृत लोगों के उत्थान की बात की गई हैं तथा जीवन में कर्म–सिद्धांत की महता पर भी बल दिया है ताकि मानव–जीवन उन्नति के चरम–शिखरों को प्राप्त कर सके। 'नरेश मेहता ने अपनी कविताएँ सामाजिक मूल्यों के आधार पर लिखी हैं। 'एकान्त समर्पण' में सामाजिक आशय एवं जनमानस के प्रति समर्पण प्रस्तुत किया है और मानव के प्रति प्रेम और सौहार्द के उदात्त भावों को भी महत्त्व दिया है। केवल यही नहीं कवि अवमूल्यन और विघटन की स्थितियों से मानवीय चेतना को मुक्त कर शेष से जुड़ जाने की अदम्य लालसा व्यक्त करता है।'[2] केवल यही नहीं इनका काव्य पौराणिक–ऐतिहासिक प्रसंगों के माध्यम से समकालीन ज्वलन्त समस्याओं को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। 'संशय की एक रात' में कवि व्यक्ति के माध्यम से विभिन्न सामाजिक सरोकारों की अभिव्यक्ति करता है, साथ ही जीवन –मूल्यों की सार्थकता सिद्ध करते हुए लोक कल्याण की कामना भी करता है। उन्होंने राम के द्वन्द्व के माध्यम से आज के मानव की दशा और दिशा को प्रस्तुत कर व्यक्ति लोगों को तनाव, कुण्ठा, हताशा और निराशा के परिणाम से अवगत करवाया। इन सबके परिणामस्वरूप मानव–मूल्य भी प्रभावित हुए। इस प्रभाव के फलस्वरूप मूल्य लगातार रूप से विघटन की ओर भी अग्रसर हुए।

इस प्रकार नरेश मेहता जी प्राचीन सामाजिक मूल्यों को वर्तमान के झरोखें से देखते हैं ताकि उनमें तारतम्यता स्थापित कर युग–परिवेश की दशा एवं दिशा को आगे बढ़ाया जा सके। अतः इस परिवर्तित परिवेश में मूल्य भी निश्चित रूप से परिवर्तित हुए हैं परन्तु कुछ मूल्य आज भी अपने अस्तित्व को बचाये हुए हैं इसलिए इनका काव्य लोक कल्याण की कामना करता है। जिसमें पर्याप्त मात्रा में सामाजिक बोध और मानवीय भावभूमि देखने को मिलती है। जो मानव और मानवता के विकास में सहायक है। 'मेरा समर्पित एकान्त' नामक कविता कवि के सामाजिक बोध एवं मानव–मूल्यों की सुरक्षा एवं संरक्षण का जीवन्त स्वरूप हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है।

इनके काव्य में व्यष्टिगत मूल्यों के साथ–साथ समष्टिगत मूल्यों को महत्त्व दिया है। 'संशय की एक रात' के राम सीता को अपनी व्यक्तिगत समस्या मानते हैं परन्तु प्रजा के सामने उन्हें झुकना पड़ा। अब यह समस्या व्यक्तिगत न रहकर समष्टिगत बन गई। 'प्रतीक्षा' नामक कविता में कवि ने कहा है कि हमें ऐसे कार्य नहीं करने चाहिए जो किसी को दुख पहुँचाये। सूखे पत्तों के माध्यम से कवि अपनी विचारधारा प्रस्तुत करते हुए कहता है कि कुचलने पर सूखे पत्तों को भी पीड़ा होती है इसलिए हमें अपने विचार समाज हित के लिए सकारात्मक रखने चाहिए और नकारात्मक विचारों को त्याग देना चाहिए–

''इन सूखे पत्तों पर मत चलो
देखते नहीं
इनकी भाषा कैसे चरमरा उठती है।
और इस चरमराने को सुन
वृक्ष चौंकते ही नहीं
उन्हें दर्द भी होता है।''[3]

इस तरह व्यक्ति जब स्वार्थ को त्याग कर परमार्थ की बात करता है तो वह समाज के प्रति अपने दायित्व का निर्वहन कर रहा हैं इसलिए कवि राम के माध्यम से कहता है–

''व्यक्तिगत मेरी समस्याएँ
क्यों ऐतिहासिक कारणों की जन्म दें
राम के कारण
भरत जैसा सौम्य
निर्वासित हो ? ''[4]

परिवार समाज की प्राथमिक ईकाई है। वह समाज का मूलाधार भी है। पारिवारिक मूल्यों में प्रेम–सौहार्द, पारस्परिक सहयोग और सहानुभूति को भाव समाहित रहता है। इस प्रकार पारिवारिक सुदृढ़ता ही सामाजिक सुख–समृद्धि एवं व्यवस्था को मजबूत बनाती है परन्तु इस पारिवारिक व्यवस्था में माँ एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है क्योंकि वह स्वयं से ज्यादा परिवार की चिन्ता करती है और परिवार को प्रेम–सूत्र में भी बांधती है–

''मैं नहीं जानता
क्योंकि नहीं देखा है कभी–
पर, जो भी
जहाँ भी लीपता होता है।
गोबर के घर आँगन
जो भी ।''[5]

इस प्रकार माँ घर परिवार में पथप्रदर्शिका का कार्य भी करती है–

दूर तक का पथ–
वही
हाँ, वही है माँ।''[6]

समाज में लोग बनावटी सफलता प्राप्त करके और कल्पना लोक में विचरण करके खुश रहते हैं लेकिन वास्तव में, ये सफलताएँ जीवन में कोई नवीनता प्रदान नहीं करती। यह केवल दिखावा है और यही दिखावा व्यक्ति को यथार्थ से कोसों दूर ले जाता है। 'बूढ़े मसूढ़ों का जलूस' नामक कविता में नरेश मेहता जी कहते हैं–

'मुझे अफसोस है–
दाँत के डॉक्टर की दुकान की ओर
सफल व्यक्तियों का
दन्तहीन असफल जलूस–
चालाक आकाश के नीचे
जूठे प्याले से शहरे में
विज्ञापन वाली शाम को कंधे पर उठाए
चला आ रहा है।''7

यही कल्पना और दिखावटीपन समकालीन परिववेश में बहुत अधिक बढ़ गई है और व्यक्ति अपने स्वार्थ, व्यवहार और परिवेश के कारण आज अकेला भी पड़ गया है–

''जब मैं मात्र अकेला रहता हूँ
तब मैं नहीं
इन बूढ़े मसूढ़ों का
सफल व्यक्तियों का जुलूस होता है।''[8]

जीवन में व्यक्ति पुरूषार्थ के मूल्य का विशेष योगदान रहता है। दशरथ की छाया राम से कहती है कि जीवन के प्रति अनासक्ति नहीं होनी चाहिए तथा जीवन में यश, धरा और नारी पुरूषार्थ के बिना नहीं मिलते। अतः 'संशय की एक रात' में दशरथ की छाया राम को पुरूषार्थ का संदेश देती है–

'' क्यों ?
किसलिए यह अनासक्ति
कर्म के प्रति कापुरूषता नहीं है यह ?
कीर्ति, यश, धरा नारी
जय, लक्ष्मी
ये नहीं है कृपा
या अनुदान
मेरे पुत्र!
भिक्षा से नहीं
वर्चस्व से अर्जित हुए थे आज तक।''[9]

व्यक्ति और समाज अन्योन्याश्रित हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू भी हैं य़द्यपि दोनों का अस्तित्व और अस्मिता, सत्ता और प्रतिष्ठा भिन्न–भिन्न हैं फिर भी दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी तरह कोई भी समस्या जो वैयक्तिक है वह किसी विशेष परिस्थितियों में सामाजिक भी लगने लगती है और सामाजिक समस्या वैयक्तिक। इस संदर्भ में सीता राम से कहती हैं–

''इतना कि
वह वैयक्तिक क्षणों में
एक सामाजिक समस्या लगे
और सामाजिक अवसरों पर
वैयक्तिक मुद्रा।''[10]

जीवन क्षणभंगुर है। इसलिए तुच्छ से जीवन में व्यक्ति को अहंकार नहीं करना चाहिए। अहं भाव व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसके जीवन को अवनति की ओर ले जाता है। यदि व्यक्ति इसका त्याग कर दे तो व्यक्ति महत्त्वपूर्ण स्थान का अधिकारी बन जाता है। अतः अहं भाव का त्याग अत्यावश्यक है क्योंकि यह मनुष्य को आसुरी वृत्तियों की ओर ले जाता है। राम कहते हैं–

''हम का यह विस्तार
हम की यह प्रभुता ही
आसुरी भाव है।
रावणत्व है।''[11]

वर्तमान युग व्यक्ति–स्वातंत्र्य का युग है। जिसके प्रभावरूवरूप संयुक्त परिवार विघटित हुए और एकाकी परिवार को बढ़ावा मिला। ऐसे परिवेश में व्यक्ति के लिए स्वार्थभावना सर्वोपरि हो गई जिससे मानवीय संबंध शिथिलता की ओर अग्रसर हुए। जिसके फलस्वरूप पारिवारिक विघटन भी हुआ। 'वनपाखी सुनो' नामक काव्य–संग्रह की 'निजपथ' कविता में कवि स्वतंत्र जीवन दृष्टि की बात करता है। जहाँ सबकी अपनी–अपनी परिस्थितियाँ और जीवन दिशा भी भिन्न–भिन्न होती हैं–

''राजपथ रथ के लिए
पगवाट है पग के लिए
सब मार्ग की अपनी दिशा, अपने क्षितिज

हम क्या करें ?
आग्रह करो मत इस तुम्हारे द्वार को माने लें भगवान–
(यह) जन यहाँ से अलग होता है।''
(पर) पथ यहाँ से अलग होता है।''[12]

व्यक्ति–स्वातंत्र्य के बाद भी व्यक्ति का व्यक्तित्व बच नहीं पाता। वह अपने आप को भीड़ में विलीन कर लेता है लेकिन कवि कहता है कि व्यक्ति को अपनी पहचान बनाने के लिए परिश्रम करना पड़ता है, साथ ही मानवता के भाव को भी जीवन में आत्मसात् करना पड़ता। ऐसे परिवेश में कवि व्यवस्था की दासता को उतार फेंकने की बात करता है–

''मैंने आत्मीय आश्वस्ति के साथ कहा
क्यों नहीं उतार फेंकते अपने पर से
व्यवस्था की यह दासता
कब तक भीड़ में संख्या बने खड़े रहोगे ?
अपने को संज्ञा दो
व्यक्ति बनो।''[13]

जीवन में व्यक्तित्व की अहं भूमिका होती है क्योंकि यदि व्यक्तित्व छोटा होगा तो चिन्तन का दायरा भी संकुचित होगा और व्यक्तित्व बड़ा होगा तो चिन्तन का दायरा भी निश्चित रूप से बड़ा होगा। अतः व्यक्ति के विराट् व्यक्तित्व का अपना महत्त्व है, जो किसी भी प्राणी को सहज रूप से अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। अतः व्यक्ति का व्यक्तित्व गंध की तरह होता है लेकिन वह सांसारिक आसक्तियों में संलिप्त रहता है जब तक वह इन सब से स्वयं को मुक्त नहीं कर लेता, अनासक्त नहीं हो जाता तब तक वह ईश्वरोन्मुख नहीं हो सकता–

''सारे वर्ण
ज्ब मन से उतर जाते हैं।
तब अन्तर के
देवात्मा हिमालय की
श्वेत देवभूमि जागृत होती है कृष्णा।
निर्भय होना ही हिमालय होना है।
और
अनासक्ति ही स्वर्ग है।''[14]

परिवर्तित सामाजिक परिवेश में व्यक्ति के अस्तित्व और अस्मिता पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। वह आज हस्ताक्षर मात्र रह गया है। जो वास्तव में व्यक्तित्व का विघटन हैं। 'गुमशुदा' नामक कविता में कवि ने भावाभिव्यक्ति करते हुए कहा है–

''रजिस्टर में वह नहीं
उसका हस्ताक्षर था
एफ.आई.आर. लिखवायी तो थी गुमशुदा की
लेकिन गुमशुदा गुमनाम नहीं होता।''[15]

इन्होंने व्यक्ति के व्यक्तित्व विघटन का यथार्थ वर्णन किया और कहा कि जो व्यक्ति जीवन–मूल्यों को त्याग देता है उसी के व्यक्तित्व का विघटन सर्वाधिक होता है परन्तु जो व्यक्ति जीवन मूल्यों को अपनाता है, वहीं अपने अस्तित्व को बचा पाता है। 'वृक्षत्व' कविता में कवि कहता है–

''मैंने चैत्र हवा से पूछा कि
इतने सारे वृक्षों के पीले पत्ते
क्या तुम छाँट कर गिराती हो ?
वह हंसी, बोली–
नहीं,
गिराना मेरा काम नहीं है।
गिरते वही हैं।
जो अपना वृक्षत्व खो चुके होते हैं।''[16]

केवल यही नहीं कवि ने समाज में व्याप्त वर्ण–व्यवस्था पर भी चिन्तन किया है जो आज भी प्रत्यक्ष– अप्रत्यक्ष रूप में हमें देखने को मिलती है परन्तु नरेश मेहता जी ने 'शबरी' के प्रसंग के माध्यम से जाति–पातिगत भेदभाव को भूलाकर व्यक्ति के गुणों को महत्त्व दिया है–

''शबरी अन्त्यजा है तो क्या,
वह शक्ति रूप है शूद्रा
है तेज रूप वह केवल
शिव शक्ति रूप हैं शूद्रा।''[17]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नरेश मेहता का काव्य मानवीय संवदेनाओं और सामाजिक बोध को अपने कलेवर में समाहित किए हुए है। इनका काव्य सामाजिक प्रतिबद्धता रखता है और जनमानस के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित है, साथ ही समाज की उन्नति के लिए कवि ने सदैव ही मानव–मूल्यों की स्थापना को महत्त्व दिया है तथा परिवर्तित परिवेश में लोगों के समक्ष आने वाली समस्याओं को भी प्रमुखता से उठाया है। इन्होंने मानव–मूल्यों के विघटन के प्रति गहरी चिन्ता व्यक्त की है। इधर व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना ने भी सामाजिक ढांचे को निश्चित रूप से प्रभावित किया है, जिससे एकाकी परिवार की भावना को बढ़ावा मिला। जिसके फलस्वरूप अनेक समस्याओं ने जन्म लिया। अतः इन्होंने विभिन्न सामाजिक ज्वलंत प्रसंगों एवं प्रश्नों को पहचान कर जीवन के संघर्षों तनावों, कुण्ठाओं आदि को उजागर किया और समाज पर पड़ने वाले प्रभाव तथा उसके दूरगामी परिणामों के प्रति भी चिन्ता व्यक्त की है। निस्सन्देह नरेश महेता का काव्य अपने कलेवर में सामाजिक बोध को समाहित किए हुए है ताकि समाज में समरसता बनी रहें और समाज निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सके।

संदर्भ सूत्र

1. नरेश मेहता, वनपाखी सुनो, पृ. 41
2. अमियचन्द्र पटेल, नेरश मेहता की काव्य–संवेदना और शिल्प, पृ.4
3. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृ. 54–55
4. वही, आखिर समुद्र से तात्पर्य, पृ. 12
5. वही, बोलने दो चीड़ को, पृ. 33
6. वहीं, देखना एक दिन, पृ. 9
7. वही, बोलने दो चीड़ को, पृ. 68
8. वही, वही, वही
9. वही, संशय की एक रात, पृ. 46
10. वहीं, देखना एक दिन, पृ. 13
11. वही, संशय की एक रात, पृ. 46
12. वही, वनपाखी सुनो, पृ. 52
13. वही, देखना एक दिन, पृ. 32
14. वही, महाप्रस्थान, पृ. 81
15. वही, संशय की एक रात, पृ. 83
16. वही, आखिर समुद्र से तात्पर्य, पृ. 41
17. वहीं, आस्था, पृ. 21